International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 30-01-2022, Accepted: 16-01-2023, Published: 01-02-2023
Volume 9, Issue 1, 2023, Page No. 34-36

हिन्दी समीक्षा का विकास– द्विवेदी जी

डॉ. के. चंद्रा
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, एस. टी. एस. एन सरकारी स्नातक कालेज, कदिरि, श्री सत्य साई, आन्ध्र प्रदेश, भारत

सारांश
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी एक कुशल प्राध्यापक, सृजनशील कथाकार, श्रेष्ठ निबंधकार एवम समर्थ आलोचक के रूप में बहुआयामी प्रतिभा– सम्पन्न पुरुष हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के बाद हिन्दी आलोचना/समीक्षा के विकास में हजारीप्रसाद दिृवेदीजी एक प्रबल एवं महत्वपूर्ण कड़ी हैं। द्विवेदी जी मानवतावादी– विकासवादी आलोचक रहे। इन्होंने परम्परागत रूढि तथा मिथ्याचार की जगह पर वैज्ञानिक दृष्टि को प्रश्रय दिया। अतः हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का महत्व हिंदी आलोचना में निर्विवाद है।

मूल शब्दः बहुआयामी, मिथ्याचार, मानवतावादी, आलोचना

साहित्येतिहास के ऐतिहासिक व्याख्याता

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी साहित्येतिहास के ऐतिहासिक व्याख्याता माने जाते हैं। आपने साहित्य के इतिहास को जीवंतता प्रदान किया और उसमें मानव–विकास के सन्दर्भ – सूत्र खोजे। उन्होंने न सिर्फ इतिहास की, वरन उसके इतिहास के आधार पर साहित्य का पुनर्निर्माण भी किया। नाथ–सिदध–जैन साहित्य गंथ जिनको शुक्लजी ने धर्म प्रचारक गंथ करार देकर साहित्य की सीमा में रखने का विरोध किया था, उन्हें द्विवेदी जी ने हिंदी साहित्य की निधि मानते हुए शुक्लजी की दृष्टि की सीमा पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए कहा कृधार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्य की कोटि से अलग नहीं की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाने लगा तो तुलसीदास का 'रामचरितमानस' भी साहित्य क्षेत्र में अविवेचय हो जाएगा और जायसी का 'पदमावत' भी साहित्य – सीमा के भीतर नहीं घुस सकेगा। आचार्य द्विवेदी जी ने हिंदी साहित्य के इतिहास को समूचे भारतीय चिंताधारा के रूप में देखने पर बल दिया। इन्होंने इसकी शुरुआत 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' और' हिन्दी साहित्य की भूमिका' नामक ग्रंथ लिखकर की। डॉ शम्भूनाथसिंहजी का कहना है कि "शुक्लजी ने यदि हिंदी साहित्य को उसका इतिहास दिया है तो द्विवेदी जी ने सचमुच उस साहित्य की भूमिका प्रस्तुत की है।" अक्षरशः यह सच भी है कि 'हिंदी साहित्य की भूमिका' सचमें उस साहित्य की भूमिका प्रस्तुत करती है। द्विवेदी जी ने सूरदास एवं कबीरदास के साहित्य में लोकधरम की तलाश कर, उन्हें जनकल्याणवादी सिद्ध किया।

आचार्य द्विवेदी जी ने समूचे हिंदी साहित्य को भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास बतलाते हुए, भक्तिकाल से ही साहित्य का प्रादुर्भाव मानने के बावजूद भी नाथ–सिदध–जैन साहित्य को उसकी पीठिका के तौर पर देखने – समझने पर जोर देते हैं। द्विवेदी जी ने कई महत्वपूर्ण एतिहासिक साक्ष्यों का हवाला देकर भक्ति साहित्य को भारतीय परंपरा का स्वाभाविक विकास कहा है उनकी इतिहास दृष्टि बड़ी प्रखर थी। उन्होंने भक्तिकालीन साहित्य को इस्लाम की प्रतिक्रिया मानने पर विरोध किया और दावे के साथ कहा कि 'अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आने वैसा ही होता जैसे आज है।' उन्हें कबीर आदि संतों का साहित्य पूरी तरह भारतीय परंपरा का साहित्य लगता है। उनकी भक्ति साधना – पद्धति, आचार – विचार आदि सभी उन्हें भारतीय दिखता है। आदिकाल की स्थापना – द्विवेदी जी की एक ऐतिहासिक देन है। इन्होंने पहली बार इस काल की समस्त कथानक रूढ़ियों और कार्यरूपों का विवेचन – विश्लेषण कर, इसके नामकरण आदिकाल की उपयुक्तता की व्याख्या की। इसके प्रमाण के लिए इन्होंने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ ही लिखा है। साहित्य के इतिहास के बारे में द्विवेदी जी की अवधारणाएं नितांत नवीन और पुष्ट हैं। साहित्य के बहाने मानवता के विकास के कई दबे छुपे तत्वों को भी प्रकाशित किया। मानवतावादी दर्शन को मानने वाले द्विवेदीजी की इतिहास विषयक मान्यताएं भी मानवतावादी सोच से प्रभावित है। उनकी दृष्टि में 'साहित्य का इतिहास ग्रंथों और ग्रंथकारों के उद्भव और विलय की कहानी ही नहीं बल्कि वह कालस्त्रोतों में बहे आते हुए जीवंत समाज की विकास – कथा है। उनकी एक मुख्य विशेषता यह भी है कि वे साहित्य के इतिहास को मात्र ग्रंथों या ग्रंथकारों के आधार पर ही नहीं देखते– परखते, बल्कि भाषा के विकास के आधार पर भी उसको जांचते परखते हैं। उन्हें संस्कृत–पाली–प्राकृत–अपभृंश का ही विकसित रूप हिन्दी आदि आधुनिक भाषाएं लगती हैं। वे हिंदी साहित्य को अपभ्रंश भाषा साहित्य का बढाव मानते हैं। इस तरह हम मानते हैं कि द्विवेदीजी हिंदी साहित्य के इतिहास की देखने की एक नई दृष्टि सामने रखते हैं।

वैज्ञानिक

समाजशास्त्रीय दृष्टि :हिंदी समीक्षा को द्विवेदीजी की एक महत्वपूर्ण देन उनकी नवीन, उदार वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय दृष्टि है। परंपरा और शास्त्र दोनों का वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप तालमेल बैठाकर द्विवेदी जी ने जीवन की व्याख्या करते हैं। इसी दृष्टिकोण के कारण आप साहित्य समीक्षा को एक नई दृष्टि दे सकें। इसी वजह से द्विवेदीजी अपने पूर्ववर्ती ही नहीं वरन् समकालीन समीक्षकों से काफी भिन्न दिखाई देते हैं। वे मनुष्य की जिजीविषा के समक्ष सबकुछ वृथा कह गए। द्विवेदीजी की इतिहास दृष्टि भी बड़ी वैज्ञानिक है। गडे हुए को उखाड़ना ही नहीं, बल्कि उखाड़ कर उसकी सार्थकता साबित करना उनकी विद्वता का द्योतक है। आधुनिक समीक्षा में उनके समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का अनूठा स्वरुप दिखाई पडा है – सामाजिक चेतना को जागृत करने वाले लेखक प्रेमचंद के विवेचन में। समाज कल्याण के तत्वों से सन्निहित समस्त साहित्य को उन्होंने प्रगतिशील साहित्य कहा। ये प्रगतिशील तत्व उन्हें आधुनिक मनीषियों में ही नहीं बल्कि सूर, तुलसी, नानक, दादू प्राचीनों में भी मिलते हैं। उन्होंने वैज्ञानिक – साहित्यिक दृष्टिकोण से उसकी विशद् व्याख्या भी की है। इसी दृष्टि से द्विवेदीजी ने आदर्शवाद, छायावाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद आदि को जांच–परखा है।

मानवतावादी जीवन– दर्शन

अनादिकाल से भारतवर्ष में देवता, साहित्य और कला को लेकर वादों की एक सुदृढ़ परंपरा रही है, मगर द्विवेदीजी का मानवतावाद इनसे सर्वथा है जो सीधा लक्ष्य मनुष्य है। उनकी मानवतावादी जीवन–दृष्टि ही उनके समूचे लेखन के केन्द्र में रही है। चाहे साहित्य सर्जना हो या विवचना–आलोचना, सर्वत्र द्विवेदीजी ने मनुष्य को ही केंद्र में रखा है। वे साहित्य को सामान्य जनता के जीवन से विच्छिन्न कोई अलग वस्तु मानते ही नहीं। अतः उनकी यह स्पष्ट मान्यता है कि काव्य और विज्ञान एक ही मानवीय चेतना के दो किनारों की उपज है।

मनुष्य को ही साहित्य का लक्ष्य मानने वाले द्विवेदीजी मानते हैं कि हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य इस मनुष्य को पशु–सामान्य धरातल से ऊपर उठाना है। आज के इस भौतिकवादी युग में द्विवेदीजी को यह मुख्य समस्या लगती है कि अच्छी बात को सुनने और मानने के लिए मनुष्य को कैसे तैयार किया जाय। द्विवेदीजी की यही दृष्टि उनके समस्त साहित्यों में अभिव्यक्त हुई है। चाहे साहित्य की समीक्षा कर रहे हों चाहे सृष्टि, सदैव उनकी निगाहें मानव–उत्थान पर केंद्रित रही है। उनकी यह दृष्टि सर्वभूत है, मानव ही नहीं मानवेत्तर जगत् भी उसके दायरे में समा गया है। मानवतावाद के इस आदर्श को अपना लेने के कारण द्विवेदीजी कहीं – कहीं परंपरागत मान्यताओं से काफी दूर भी चले गये हैं। इतिहास पर भी वे मानवतावादी दृष्टि से विचार करते हैं और यह घोषणा करते हैं कि भारतीय इतिहास केवल राजाओं और पंडितों का इतिहास नहीं है। वह उन असंख्य अनाम और अपरिचित वर्गों और जातियों का सम्मिश्रण है, जो इतिहास के गर्त में बनते–मिटते और दबते गये। उसमें मानव के विकास के गूढ़ रहस्य छिपे हुए हैं, मनुष्यता की कहानी छुपी हुई है। अपनी इस मानवतावादी दृष्टि से द्विवेदीजी ने इन गूढ रहस्यों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। आचार्य द्विवेदीजी ने मानवतावाद में इतनी प्रगाढ आस्था रखने के कारण ही मानवता की सेवा को ही वास्तविक पूजा और उपासना मानते हैं। उनकी दृष्टि में मनुष्य के सिवा और कोई ईश्वर नहीं है, और मानवता के कल्याण के लिए जो जाति जो कुछ भी कर सकती है, करती है, वही श्रेष्ठ है, महान है। अतः उनके शब्दों में "मनुष्य को देवता बनाना ही छन्द साधना का चरम लक्ष्य है।" डॉ. रामदरश मिश्र द्विवेदीजी के मानवतावादी जीवन–दर्शन प्रकाश डालते हुए कहा कि "इनका मानवतावाद रूढ और स्थूल नहीं है, वह युगसापेक्ष गतिशीलता से समन्वित है तथा उनका मानवतावाद साहित्य का स्त्रोत् भी है, लक्ष्य भी है और गंतव्य भी। "अतः हम कह सकते हैं कि आचार्य द्विवेदीजी का मानवतावादी दर्शन एक पुष्ट और स्वस्थ दर्शन है, जो साहित्य को उनकी यह एक अनमोल देन है।

भारतीय संस्कृति के आख्याता

आधुनिक युग में संस्कृति के व्याख्याताओं में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का नाम अग्रगणय है। संस्कृति और साहित्य दोनों पर गहन चिंतन–मनन किया है। यही वजह है कि उनके समस्त साहित्य–लेखन का मूल स्वर सांस्कृतिक है। द्विवेदीजी का सांस्कृतिक चिंतन बहुत व्यापक है। उनकी दृष्टि में संस्कृति किसी देश, जाति या धर्म के दायरे में बंधी नहीं है, वह सर्वव्यापक है। उनके अनुसार 'मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएं ही संस्कृ ति हैं।' संस्कृति समस्त सीखे हूए व्यवहार अथवा व्यवहार का नाम है जो सामाजिक परंपरा से प्राप्त होती है। संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय है जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं। द्विवेदीजी सभ्यता और संस्कृति को अन्योन्याश्रित मानते हैं। क्योंकि सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों को लक्ष्य करने का विधान है और संस्कृति प्रयोजनातीत आनंद की अभिव्यक्ति। हजारों वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डालते हुए द्विवेदीजी कहते हैं कि यह संस्कृति शाश्वत या एकदेशीय न होकर सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है। संस्कृति मनुष्य के चित्त के संस्कार का परिणाम है। द्विवेदीजी मान्यता यह भी है कि संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। अपने आपको दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर दूसरों के लिए न्यौछावर कर देना, यहीं भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है। यही भारतीय संस्कृति का आदर्श है। आज हम सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत नीचे गिर गए हैं, इसका प्रधान कारण यही है कि हम इस महान आदर्श को भूल गए हैं। आज दुनिया में जो सांस्कृतिक अवमूल्यन व्याप्त है, जिस तरह से परमाणु–संस्कृति का जाल फैलता जा रहा है उससे बचने का सिर्फ एक ही मार्ग है और वह है एक ऐसी मानव–संस्कृति का जाल फैलता जा रहा है। उससे बचने का सिर्फ एक ही मार्ग है, और वह है एक ऐसी मानव–संस्कृति का निर्माण, जिसमें दिक् और काल से परे मानवता की भावना हो। और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसी संस्कृति के निर्माण द्विवेदी जी जैसी मानवतावादी विचारक भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दाय मानते हैं।

द्विवेदी जी के चिंतन की एक विशेषता यह है कि वे न प्राचीनता को टटोलते हैं, वरन् समसामयिक सन्दर्भ में उसकी व्याख्यायित भी करते जाते हैं। परंतु उस पर अपना अभिमत न थोपकर तार्किक निष्कर्षों से उसे सप्रमाण सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। उनका सांस्कृतिक चिंतन आज इसलिए सर्वाधिक प्रासंगिक है। क्योंकि वे प्राचीन भारतीय संस्कृति तदयुगीन वैशिष्ट्य को मानते हुए भी आज की परिस्थितियों के अनुकूल ऐसी संस्कृति की ही वकालत है जिसमें मौजूदा समस्याओं के निदान के तत्त्व सम्मिलित हों। वे ऐसी सांस्कृतिक, ऐसे तत्वों के सख्त खिलाफ हैं, जिनसे सामाजिक वैमनस्य का विष फैलता है। हिन्दू संस्कृति में आई हुई विसंगतियों को वे दूर करने में पक्षधर हैं। हिंदू – संस्कृति का प्रलाप करके समाज में ठेकेदारी करने वालों से उन्हें सख्त नफ़रत है। वे हिंदू संस्कृति छुआछूत की प्रवृत्ति पर बड़ा व्यंग्य करते हैं। उन्होंने यह साबित करने का बहुत प्रयत्न किया है कि हिंदू और मुसलमानों दोनों के उच्च आध्यात्मिक क्षेत्र में कहीं मत वैभिन्य नहीं है। वें एक ही परमपिता के दोनों पुत्र हैं। अतः इन तमाम भारतीय संस्कृति की वैशिष्ट्यताओं पर दृष्टि के अनन्तर वे यह स्वीकार करते हैं कि ढेरों कमियों के बावजूद भी संसार की समस्त संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति में ही वह समन्वयकारी प्राणतत्व है जो समूची मानवता को गौरवान्वित कर सकती है। द्विवेदी जी कहते हैं कि 'भारतीय संस्कृति के प्राण में एकत्व है, उसके रक्त में सहानुभूति है। यही कारण है कि आज इस देश में सहस्राधिक समाज एक–दूसरे को बाधा न पहुंचाते हुए अपनी विशेषताओं के समेत हैं।' समग्रतः कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी जैसे चिंतक के सांस्कृतिक विचार न केवल भारतीय समाज वरन् विश्व के समक्ष एक ऐसा धरातल प्रस्तुत करते हैं जिस पर न केवल मानवीय जीवन–मूल्यों को कसा जा सकता है, वरन् मानवीय संवेदना की सिरहन को भी स्पष्टता से महसूस किया जा सकता है। द्विवेदी जी के ये सांस्कृतिक विचार आज के परिप्रेक्ष्य में निश्चित रूप से विचारणीय हैं।

साहित्यशस्त्रीय अवदान

रस, अलंकार, रीति, ध्वनि आदि भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख तत्वों पर भी विचार प्रकट किया है। परन्तु एक काव्यशास्त्रीय की तरह नहीं बल्कि एक सामाजिक साहित्यकार की तरह। उन्होंने रस, अलंकार और ध्वनि को वहीं तक सार्थक माना है जहाँ तक साहित्य के लिए आवश्यक माना है और जहाँ तक वे मानव–कल्याण में सहायक हों। युरोप का'कला–कला के लिए' सिद्धांत उन्हें मान्य इसलिए नहीं है क्योंकि वह मानव जीवन से कटा हुआ है। यही नहीं प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी कई ऐसे अवसर आये हैं जहां अलंकार – चमत्कार का साधन मात्र बनकर रह गया है और ये मानवीय जीवनधारा से एकदम कटकर अलग

हो गया है। इसीलिए ऐसे साहित्य को भी वे श्रेयस्कर नहीं मानते। अतः द्विवेदी जी का स्पष्ट कहना है कि "हमारी राजनीति, हमारी और हमारी नव–निर्माण की योजनाएं तभी सर्वमंगलमयी–विधायिनी बन सकेंगी, जब हमारा ह्रदय उदार और संवेदनशील होगा, बुद्धि सूक्ष्म और सारग्रहिणी होगी और संकल्प महान और शुभ होगा। इसके लिए साहित्य के उन सुकुमार अंगों के व्यापक प्रचार की आवश्यकता होगी, जो मनुष्य को मनुष्य के सुख–दुख के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने मनुष्य को केन्द्र में रखकर ही साहित्यशस्त्रीय तत्वों एवं अन्य साहित्यिक उपादानों पर विचार किया है।

निष्कर्ष

यह मानना ही होगा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने हिंदी समीक्षा को सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों दृष्टियों से काफी समृद्ध बनाया है। उन्होंने अपने मानवतावादी दर्शन से मनुष्य की महत्ता प्रतिपादित करते हुए साहित्य की व्याख्या की। नए लेखकों को भी इस ओर प्रेरित किया। इतिहास के उन तत्वों को खोज निकाला जिनमें मानवता के विकास के सूत्र मिलते हैं और भारतवर्ष के विकास की कहानी मिलती है। इस तरह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का हिंदी समीक्षा के विकास में बहुत बड़ा एवं अतुलनीय योगदान है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी आलोचना– विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ– ४१,४२
2. हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार– रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ– ३६, ४१
3. हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार– रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ–५०, ५१